फ्रेडरिक एंगेल्स (1881)

काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी

एंगेल्स ने यह लेख 'दि लेबर स्टैण्डर्ड' के लिए मई 1-2, 1881 को लिखा था जो उसी वर्ष 7 मई को प्रकाशित हुआ था

पिछले पचास वर्षों से यह नारा अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग के आन्दोलन का आदर्श वाक्य बना हुआ है। इसने 1824 के कुख्यात कॉम्बिनेशन कानूनों के ख़त्म होने के बाद ट्रेडयूनियनों के पैदा होने के दौरान भी अच्छा काम किया। इसने गौरवशाली चार्टिस्ट आन्दोलन के दौरान भी बेहतरीन काम किया जब अंग्रेज़ मज़दूर यूरोपीय मज़दूर वर्ग के आगे चल रहे थे। लेकिन समय गुज़र रहा है, और बहुत-सी अच्छी चीज़ें जो कि पचाल साल, यहाँ तक कि तीस साल पहले तक वांछनीय और आवश्यक थीं, अब पुरानी और पूरी तरह से अप्रासंगिक हो चली हैं। क्या यह पुराना, सम्मानित नारा भी अब ऐसी चीज़ों की ही श्रेणी में शामिल हो चुका है?

काम के उचित दिन के लिए उचित मज़दूरी? लेकिन काम का उचित दिन और उसकी उचित मज़दूरी क्या है? ये किस प्रकार उन नियमों से निर्धारित होते हैं जिसके तहत आधुनिक समाज मौजूद है और विकसित हो रहा है? इसके जवाब लिए हमें किसी नैतिकता या कानून और समानता, या मानवता, न्याय या धर्मार्थ कार्यों के किसी विज्ञान की शरण नहीं लेनी चाहिए। नैतिक तौर पर या कानून में जो उचित है वह सामाजिक तौर पर जो उचित है उससे काफी दूर हो सकता है। सामाजिक तौर पर उचित होना या अनुचित होना सिर्फ एक विज्ञान से तय होता है – वह विज्ञान जो उत्पादन और विनिमय के भौतिक तथ्यों को समझता है, राजनीतिक अर्थशास्त्र का विज्ञान।

अब सवाल यह है कि राजनीतिक अर्थशास्त्र एक काम के उचित दिन की उचित मज़दूरी किसे कहता है? वह बस मज़दूरी की दर और दिनभर के काम की लम्बाई और सघनता को इसका आधार मानता है जो मालिकों की प्रतियोगिता से निर्धारित होते हैं और खुले बाज़ार में लगाये जाते हैं। और जब वे निर्धारित हो जाते हैं, तो वास्तव में वे क्या होते हैं?

सामान्य स्थितियों के तहत, दिन की उचित मज़दूरी वह राशि होती है जो मज़दूर को उसके निवास स्थान और देश के जीवन के स्तर के अनुसार जीविका के आवश्यक साधन मुहैया कराये ताकि वह काम करने और अपनी नस्ल को जारी रखने की स्थिति में बना रह सके। व्यापार के उतार-चढ़ाव के साथ मज़दूरी की वास्तविक दर कभी इस दर के नीचे हो सकती है तो कभी ऊपर; लेकिन उचित स्थितियों में, वह दर सभी उतार-चढ़ावों की औसत होनी चाहिए।

दिन का उचित काम काम के दिन की वह लम्बाई और वास्तविक काम की वह सघनता है जो कामगार के एक दिन की कुल कार्यशक्ति को अगले और आने वाले दिनों में उतना की काम करने की उसकी क्षमता का अतिक्रमण किये बिना ख़र्च करती है।

इस प्रकार इस लेन-देन को इस तरह से समझाया जा सकता है – कामगार पूँजीपति को अपने दिनभर की कार्यशक्ति देता है; यानी, इतनी कार्यशक्ति जो कि इस लेन-देन को लगातार जारी रखने को असम्भव बनाये बिना वह दे सकता है। बदले में उसे ठीक उतना मिलता है जो हर दिन इसी लेन-देन को दोहराते रहने के लिए आवश्यक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने लायक होता है, इससे ज़रा भी ज्यादा नहीं। कामगार जितना अधिक दे सकता है देता है, पूँजीपति जितना कम दे सकता है देता है, जैसा कि लेन-देन की प्रकृति दिखलाती है। यह उचितपन की बड़ी ख़ास किस्म है।

लेकिन आइये मामले को थोड़ा गहराई से देखें। राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, चूँकि मज़दूरी और काम के दिन प्रतियोगिता द्वारा निर्धारित होते हैं, इसलिए उचितपन का अर्थ यह प्रतीत होता है कि दोनों पक्षों को बराबरी की शर्तों पर एकसमान उचित शुरुआत मिलती है। लेकिन ऐसा नहीं होता है। पूँजीपति अगर श्रमिक से सहमत नहीं होता है, तो उसके लिए इन्तज़ार करना, और अपनी पूँजी के बूते जीना मुमकिन होता है, लेकिन मज़दूर के लिए नहीं। उसके पास जीने के लिए मज़दूरी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता और इसलिए उसे जब भी, जहाँ भी और जिन भी शर्तों पर काम मिले उसे करना ही होता है। कामगार के पास एक न्यायपूर्ण शुरुआत का कोई मौका नहीं होता। उसके हाथ भूख के हाथों भयंकर तरह से बँधे होते हैं। लेकिन फिर भी, पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार, यही न्यायसंगतता का सच्चा नमूना है।

लेकिन यह एक मामूली बात है। नये उद्योगों में यान्त्रिक शक्ति और यन्त्रों के इस्तेमाल और जिन उद्योगों में यह पहले से मौजूद है वहाँ इसका विस्तार, "अधिक से अधिक हाथों" को काम के बाहर धकेलते रहते हैं; और ये काम वे उस दर से कहीं तेज़ रफ्तार से करते हैं, जिस दर पर ये बेकार हाथ देश के मैन्युफैक्चर में खप सकते हैं, काम पा सकते हैं। ये "ख़ाली हाथ" पूँजी के उपयोग के लिए एक वास्तविक आरक्षित औद्योगिक फौज खड़ी कर देते हैं। अगर धन्धा बुरा है तो वे भूख से मर सकते हैं, भीख माँग सकते हैं, चोरी कर सकते हैं या कार्यशालाओं (इंग्लैण्ड में 1834 में ग़रीब कानून बनाये गये थे जिसके तहत काम करने में सक्षम मज़दूरों की राहत के लिए जेलनुमा कार्यशालाएँ बनायी गयी थीं जिसमें कामगार अनुत्पादक, एकरस और थका देने वाले श्रम में लगाये जाते थे। मज़दूर इन्हें "ग़रीब का जेलख़ाना" कहते थे) में जा सकते हैं; अगर धन्धा अच्छा है तो वे उत्पादन को विस्तारित करने के लिए हमेशा तैयार खड़े होते हैं; और जब तक इस आरक्षित सेना के अन्तिम पुरुष, स्त्री या बच्चे को काम नहीं मिल जाता – जो कि अनियन्त्रित अति-उत्पादन के समय ही होता है – तब तक उनके बीच की प्रतियोगिता मज़दूरी को नीचे

रखेगी, और केवल अपनी मौजूदगी भर से श्रम के साथ पूँजी के संघर्ष में पूँजी की ताकत को बढ़ायेगी। पूँजी के साथ दौड़ में, श्रम न केवल अपंग की स्थिति में होता है, बल्कि उसे अपने पैरों से बँधा तोप का गोला भी खींचना होता है। लेकिन फिर भी यह पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार न्यायसंगत है।

लेकिन आइये पता लगायें कि किस मद से पूँजी इस उचित मज़दूरी का भुगतान करती है? ज़ाहिरा तौर पर, पूँजी से। लेकिन पूँजी किसी मूल्य का उत्पादन नहीं करती। धरती के अलावा, श्रम सम्पदा का एकमात्र स्रोत है; पूँजी अपने आप में और कुछ भी नहीं है बल्कि भण्डारित श्रम है। इसलिए श्रम की मज़दूरी श्रम से ही दी जाती है, और कामगार को उसी के उत्पाद से भुगतान किया जाता है। जिसको हम सामान्य न्यायसंगतता कह सकते हैं, उसके अनुसार श्रमिक की मज़दूरी का श्रम के उत्पाद में हिस्सा होना चाहिए। लेकिन राजनीतिक अर्थशास्त्र के अनुसार वह उचित नहीं होगा। इसके विपरीत, कामगार के श्रम का उत्पाद पूँजीपति के पास चला जाता है और कामगार इससे अपनी ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरतों के अलावा और कुछ नहीं पाता। और इस प्रकार प्रतियोगिता की इस असामान्य रूप से "उचित" दौड़ का अन्त यह होता है कि काम करने वालों के श्रम का उत्पाद निरपवाद रूप से उन लोगों के हाथों मे संचित होता जाता है जो काम नहीं करते हैं, और उनके हाथों में वह उन्हीं मनुष्यों को ग़ुलाम बनाने का सबसे शक्तिशाली हथियार बन जाता है जिन्होंने उसे पैदा किया था।

उचित काम के दिन की उचित मज़दूरी! उचित काम के दिन के बारे में भी काफी कुछ कहा जा सकता है, जिनकी न्यायसंगतता मज़दूरी की न्यायसंगतता के बिल्कुल समान है। लेकिन हमें इसे किसी और मौके के लिए छोड़ देना चाहिए। जो कुछ भी कहा गया है उससे बिल्कुल साफ है कि यह पुराना नारा अपना जीवन पूरा कर चुका है, और आज के समय में इसमें कम ही दम है। राजनीतिक अर्थशास्त्र की न्यायप्रियता, जिस तरीके से वह उन नियमों को स्थापित करती है जो वास्तविक समाज को चलाते हैं, वह सारी न्यायप्रियता एक ही पक्ष में है – पूँजी के पक्ष में। इसलिए, इस पुराने आदर्शवाक्य को हमेशा के लिए दफ्न रहने दिया जाये और इसकी जगह किसी अन्य आदर्शवाक्य को लेने दी जाये।